ISSN 2455-5169

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

कविता

शैलेन्द्र कुमार शुक्ल की कविताएँ

टी जी टी शिक्षक(हिंदी)
जमुआ, गिरिडीह झारखण्ड
shailendrashuklahcu@gmail.com

एक दिन दुनिया खत्म हो जाएगी

किसी दिन सिहर कर पूछेगी धरती
अपनी हथेलियों से सहलाकर सूखी नदी का माथा
किसी दिन मरती हुई अंतिम चिड़िया
पुराने दिनों की देहरी पर चोंच फैलाकर
सोचेगी अपना अपराध
किसी दिन संसद भवन में चीखता हुआ घुस जाएगा
आखिरी बचा हुआ कौवा
किसी दिन मरते हुए बूढ़े बैल की याद...

किसी दिन जानने वाले आएंगे
मुझे ढूंढते
किसी दिन मैं जाऊंगा
उनसे मिलने
आखिरी मुलाकात में
तुम मुझसे बुलवाना
अल्ला हो अकबर
मैं तुमसे जबरन बुलवाऊंगा
जै श्री राम
न्यूक्लियर वेस्ट के घूरे पर
हम मनाएंगे अपने धर्मों का आखिरी जश्न
उस आखिर वक्त
क़ांर की चटख धूप में छिली हुई दूब की गठरी
मेरी खुरपी
बहुत याद आएगी
याद आएगा फल से लदा हुआ कनकोहरी का बिरछ
भादों में चरवाही करते पके हुए उंगलियों के पोर
मरहम की याद
कि हर जगह जब जम रहा है कार्बन
कौन जानता था महाराज
जो अंडे देते हैं परमाणु बम हैं
देखो तो कैसे ऑमलेट बना रही बुढ़िया
कितना स्वादिस्ट है उन्माद

शीर्षकहीन शीर्षक

1

मैं बलात्कार का कविता में विरोध कर रहा हूँ
तुम बलात्कार के लिए
कविता का विरोध करो
या खिल्ली उड़ाओ
अगर ऐसे ही रहा तो

हर विरोध का बलात्कार एक दिन
वैधानिक हो उठेगा !

2

मैं भी अब उतना कम्युनिस्ट नहीं रहा
तुम भी नहीं रहे उतने संघी
समय की जिम्मेदारी ने
हमें आदमी बना दिया है क्या ?
कोई बताएगा !

3

इच्छाएं मर चुकी हैं
लेकिन मृत्यु की इच्छा अभी बची है
अपने पौरुष से हताश जाति
क्या करती है सुकुल जी ?
बताओगे तो कौन सुनने को बचेगा !

बलात्कार

मेरे देश में यह कैसी आग लगी है
किसने लगाई है यह आग
मैं भूख की आग में सुलग रहा हूँ
धधक रहा हूँ बेरोजगारी की आग में
दम घुट रहा है मेरा यह धुवां कैसा है
ये ऐयाशियां किसकी हैं

क्या सभ्यता के इतिहास में
आग का अविष्कार इसलिए हुआ था
क्या आग ढोने के लिए बनाया गया था पहिया
आज सोचता हूँ तो उदास हो जाता हूँ
क्या इसी तरह सभ्य होना था इस सभ्यता को
हमें डूब मरना चाहिए था !
इस मुहावरे के विरोध में
आज हर जगह आग फैल गई है
सभ्यता अग्निस्नान कर रही है
आइए हम फिर से दोहराते हैं
दुनिया की सबसे सभ्य भाषा में
पवित्रतम मंत्र
कि यह एक जली हुई औरत की लाश है

कभी कभी आर्त नाद से फट जाती है धरती
बूढ़ी औरत ने कोसा था कभी किसी मर्द को
कि तुम्हारे ऊपर बादर काहे नहीं फट जाता !
सब कुछ धोखा है साहब !
याद है न अगिन परिच्छा !!

संस्कारों से सुघर मेरी आँखें हैं या तुम्हारा चेहरा
आइए एक बहस छेड़ देते हैं
हमारे धर्मों में बलात्कार से सुंदर कुछ भी नहीं
मुसलमान, हिन्दू, ईसाई जैसे सबके सब विकल्प
सदियों तक करें गणना
कि उनके यहाँ जली हुई औरतों की कितनी लाशें हैं
कितने बच्चे दागे जा चुके हैं
कितने भूख की आग में झुलस रहे हैं
कितने बेरोजगार धुंधुआ रहे हैं
मैं हर मजहब में आग देख रहा हूँ
दोज़ख की आग

आग, जिसे पहली बार किसी औरत ने
अपने चूल्हे में बटलोई ने नीचे जलाई थी
देखो दक्कन में एक जली हुई औरत की लाश पड़ी
है

सच तो यह है कि इस सभ्यता ने आग के साथ सबसे
ज्यादा बलात्कार किया है

वे शामें

(आदरणीय अरुण त्रिपाठी को उनके जन्मदिन पर याद करते हुए)

वे शामें
जिनके वक्ष से गुजर चुकी थी
पॉलिटिक लू
जियोग्राफिकल हुदहुद
और मेटाफिजिकल सुनामी

वे शामें
जो शाम तक इंतिजार करती थीं
सहमी हुई उन तमाम आहटों का
जिनके हासिल थे हे राम !

वे शामें
जिन्होंने एक सुबह का सपना देखा था
सूरज ढलते ही जिनकी मुँडेर पर
एक थका हुआ गिद्ध आकर बैठ जाता था
और पूछता था एक सवाल
57 से 47 तक अनंत क्षितिज से बिलख उठती थीं
हुत आत्माएं
कहाँ हैं हमारी सुबहें !

मैं भगवत दा से पूछता था
और भगवत दा अरुण दा से
जिनकी आंखें नागार्जुन सराय के सामने पसरी काली
सड़क सी
भर जातीं निचाट खाली पन से
और कांप उठती थी छाया

हम मारे जा रहे विचारों के दौर में
जोरदार बहसों में शरीक थे
इस तरह हम अपनी शामों में शामिल थे।

.....